[Agarwal *, Vol.5 (Iss.4): April, 2017]
ICV (Index Copernicus Value) 2015: 71.21

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
IF: 4.321 (CosmosImpactFactor), 2.532 (I2OR)
InfoBase Index IBI Factor 3.86

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

नागार्जुन की कविता में जनवादी चेतना

रीना अग्रवाल [*1]
[*1] सहायक प्रोफसर (हिंदी विभाग), जनता विद्या मंदिर, चरखी दादरी।

DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v5.i4.2017.1808

Cite This Article: रीना अवगराल. (2017). "नागार्जुन की कविता में वजनादी चेतना." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 5(4), 159-161. 10.29121/granthaalayah.v5.i4.2017.1808.

1. भूमिका

जनवाद शब्द अंग्रेजी के डेमोक्रेसी का हिंदी प्रतिरूप है, जिसके लिए जनतंत्र, लोकतंत्र, लोकशाही आदि शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है – एक ऐसा तंत्र या व्यवस्था जिसमें जनता की संप्रभुता हो।

यह निर्विवाद सत्य है कि आर्थिक विषमता सभी कठिनाइयों की जड़ हैं। इसके कारण संसार विश्रृंखलित एवं कुंठित होता है और इसी कारण भारत में प्राचीन काल से ही मनीषियों ने मानव–मानव के मध्य आर्थिक विषमता को दूर करने का स्वप्न देखा। जनवाद एक ऐसी ही दृष्टि है जिसमें मजदूरों, किसानों, असहाय पीड़ितों को एक जुट कर उनके सच्चे साथी की भूमिका निभाती है।

जनवादी चेता को जानने से पहले चेतना का स्वरूप जानना आवश्यक है। चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है अर्थात् वस्तुओं, विषयों, व्यवहारों का ज्ञान। 'डिक्शनरी ऑफ फिलोसफी' के अनुसार ''चेतना वस्तुनिष्ठ यथार्थ पर चिंतन का सर्वोच्च स्वरूप है जो केवल मनुष्य में पाई जाती है। चेतना उन सभी मानसिक क्रियाओं का योग है, जो वस्तुगत यथार्थ के बारे में आदमी की समझ और उसकी व्यक्तिगत समझ में, सक्रिय रूप से सहायक होती है।''[1] निष्कर्ष यही है कि मनुष्य जब वस्तुओं को अपनी समझदारी और ज्ञान के आधार पर परखकर उनके प्रति अपने दृष्टिकोण का निर्माण करता है, तो उसे चेतना की संज्ञा दी जाती है।

जनवाद शब्द हिंदी साहित्य के लिए अपेक्षाकृत नया है। यह प्रगतिवाद से भिन्न एक ऐसी विचारधारा है जिसमें कवियों ने जनता के लिए, जनता की भाषा में ऐसी कविताओं की रचना की जो मुक्तिबोध के शब्दों में ''जनता के मानसिक परिष्कार, उसके आदर्श और मनोरंजन से लेकर क्रांति पथ की तरफ मोड़ने वाला प्राकृतिक शोभा और प्रेम, शोषण और सत्ता के घमंड को चूर करने वाला स्वतंत्रता और मुक्ति गीतों को अभिव्यक्ति देने वाला 'जनवादी' काव्य है।''[2] क्योंकि वह मन को मानवीय, जन को व्यापक जन बनाने वाला काव्य है।

किसी भी राजनीतिक मतवाद से दूर रहकर इन कवियों ने जनता का पक्ष लिया, उसी के सुख–दुख को अभिव्यक्त किया और बहुसंख्यक जनता की बेहतर जिंदगी के लिए अपनी कलम की लड़ाई लड़ी। जनता इनकी प्राण है। इनके लिए जनता ही सबकुछ है। इसलिए ये जनवादी कवि हैं।

1960 के बाद समकालीन विश्व में समाज और जीवन को देखने परखने की एक नवीन दृष्टि जाग्रत हो रही थी। भारत में भी सन् 60 के बाद साहित्यिक एवं राजनीतिक आंदोलन का क्रम शुरू हो चुका था। नागार्जुन स्वाधीनता पश्चात भारत के, जनवादी हिंदी काव्य के प्रतिनिधि जनकवि के रूप में सुविख्यात है और वे स्वयं अपना ये उत्तरदायित्व जानते है, इसलिए कहते हैं –

जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ
जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ
जनकवि हूँ मैं क्यों चाटूँ थूक तुम्हारी
श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बंदूक तुम्हारी।[3]

नागार्जुन की कविताओं का स्थायी भाव प्रतिहिंसा है और यही प्रतिहिंसा इनके काव्य की शक्ति है। वे कहते हैं ''प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का''[4]

यह प्रतिहिंसा वैयक्तिक न होकर समस्त जनता की प्रतिहिंसा है, जिसके वे प्रतिनिधि कवि हैं।

नागार्जुन की प्रतिहिंसा ने किसी को भी नहीं छोड़ा, चाहे वह महात्मा गाँधी हो, नेहरू हो या फिर सामान्य नौकरशाही या पुलिस अफसर। नेहरू के शासन काल की उपलब्धियों के विषय में वे कहते हैं –

हम चावल लाते एक किलो, दस का दे आते नोट मगर
यों सिकुड़े रहते सपने में, सिलवाते ऊनी कोट मगर
गालियाँ छलकती, बैलों की जोड़ी को देते बोट मगर
हम गाँजा ही बेचा करते, लेते खादी की ओट मगर
खुलते खिलते कुछ गाल और
तुम रह जाते दस साल और।[5]

नागार्जुन की जनवादी चेतना बहुत प्रखर थी। इन्होंने तुच्छ से, तुच्छ लोगों को भी अपनी कविता का नायक बनाया और इन्हीं शोषितों, पीड़ितों की जिंदगी को अपनी कविता में गहराई एवं मार्मिकता से चित्रित किया, इन्होंने अपने आप को जन सामान्य के साथ एकाकार कर लिया था। इनकी कविताएँ कवि जन सामान्य के बीच पूर्ण तादात्म्य की कविताएँ हैं। सामाजिक और आर्थिक विषमता को जितने जबरदस्त एवं प्रभावशाली ढंग से नागार्जुन ने चित्रित किया उतना किसी और ने नहीं। देश की जनता का दुख–दर्द पूर्ण ताकत से नागार्जुन की कविताओं में व्यक्त हुआ है। अपनी कविता 'घर से बाहर निकलेगी कैसे लजवन्ती' में वे वर्तमान व्यवस्था के चलते गांवों की दुर्दशा का चित्रण करते हुए कहते हैं –

नीचे निपट गरीबी ऊपर ठाट–बाट की रजत जयन्ती
शर्म न आती मना रहे वे, महँगाई की रजत जयन्ती।[6]

नागार्जुन ने एक तरफ जीवन की ठोस विसंगतियों का सीधा चित्रण किया है तो दूसरी ओर जीवन के अन्तर्विरोधों को प्रकट किया है। 1960 के बाद की कविताओं में इन्होंने राजनीतिक घटनाओं को विषय बनाया, जो राजनीतिक जीवन का पूरा–पूरा आँकलन करती है। इन्होंने दो प्रकार की राजनीतिक कविताएँ

लिखीं, एक सरकार और शोषण तंत्र के विरोध में तो दूसरी मेहनतकश जनता के संघर्षों के पक्ष में। उनका मत यह है कि मेहनतकश जनता सदैव जीतती है। जिसकी अभिव्यक्ति 'शासन की बंदूक' कविता में करते हुए वे कहते है –

जली ठूंठ पर बैठकर, गयी कोकिला कूक
बाल न बांका कर सकी, शासन की बंदूक।[7]

नागार्जुन की कविताओं में एक ओर जनता अपनी गरिमा के साथ मौजूद है, दूसरी ओर शोषण तंत्र के समर्थक, श्रीहीन, भ्रष्ट और पूरी तरह विघटित चरित्र के हैं। उन्होंने शासकों के सभी छलछद्मों का पर्दाफाश किया है। इन्दिरा गांधी के क्रूर और वीभत्स चरित्र को 'काली' के रूप में प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं –

मुण्ड माल के लिए गरीबों पर निगाह है
धनपतियों के लिए दया की खुली राह है
कितना खून पिया है जाती नहीं खुमारी
सुर्ख और लम्बी है मइया जीभ तुम्हारी।[8]

आपातकाल के दौरान अनेक जनवादी नेताओं को झूठे आरोपों में फंसाकर घोर मानसिक एवं शारीरिक यंत्रणाएँ दी गयी जिनको जनवादी कवियों ने अपने काव्य में सशक्त अभिव्यक्ति दी। अपनी कविता 'सूरज सहम कर उगेगा' में आपातकाल के आतंक का आतंकित कर देने वाला चित्र खींचते हुए वे कहते हैं –

लगता है
हिंद के आसमान में
सूरज पर भी लागू होंगे
आपातकालीन स्थिति वाले आर्डिनेंस
लगता है
हिंद के आसमान में
अब सूरज सहम कर उगेगा।[9]

नागार्जुन जिस जमीन पर खड़े होकर लाखों सामान्य जन को चित्रित करते हैं वह देश के जनसाधारण की अपनी जमीन अपनी मानसिकता है। नागार्जुन की जनवादी चेतना उनके पूरे रचनाकार के साथ देश के लाखों साधारण जनों के साथ आत्मसात हो गयी, नागार्जुन की जनवादी चेतना ने अपने को पूरी तरह डि–क्लास करके नागार्जुन की चेतना को देश की जन साधारण की चेतना के साथ पूरी तरह एकाकार करके उन्हें जनसाधारण के प्रतिनिधि रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।

सन्दर्भ सूची

1. संपा0 आई0 फोलोव डिक्शनरी ऑफ फिलासफी, पृ. 81–82
2. मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, मुक्तिबोध रचनावली, खंड–5, पृ0 76
3. आलोचना (जनवरी–मार्च, अप्रैल–जून, 1981), पृ. 1
4. वही, पृ. 1
5. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ, भाग–2, पृ. 163
6. वही, पृ. 197
7. वही, पृ. 169
8. वही, पृ. 146
9. वही, पृ. 221